गोदान

मुंशी प्रेमचंद

गोदान

श्री प्रेमचंद

1

होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी देकर अपनी स्त्री धनिया से कहा-गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूं। जरा मेरी लाठी दे दे।

धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। उपले पाथकर आयी थी। बोली-अरे, कुछ रम-पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है।

होरी ने अपने झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़कर कहा – तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिन्ता है कि अवेर हो गयी तो मालिक से भेंट न होगी। असनान-पूजा करने लगेंगे, तो घंटों बैठे बीत जायेगा ।

'इसी से तो कहती हूँ, कुछ जलपान कर लो। और आज न जाओगे तो कौन हरज होगा। अभी तो परसों गये थे।'

'तू जो बात नहीं समझती, उसमें टाँग क्यों अड़ाती है भाई ! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है। नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गये। गाँव में इतने आदमी तो है, किस पर बेदखली नहीं आयी, किस पर कुड़की नहीं आयी। जब दूसरे के पाँवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई हैं, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।'

धनिया इतनी व्यवहार-कुशल न थी। उसका विचार था कि हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाये । यद्यपि अपने विवाहित जीवन के इन बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर-ब्योत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो; मगर लगान बेबाक़ होना मुश्किल है। फिर भी वह हार न मानती थी, और इस विषय पर स्त्री-पुरुष में आये दिन संग्राम छिड़ा रहता था। उसकी छः सन्तानों में अब केवल तीन जिन्दा है, एक लड़का गोबर कोई सोलह साल का, और दो लड़कियाँ सोना और रूपा, बारह और आठ साल की। तीन लड़के बचपन ही में मर गये। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवादारू होती तो वे बच जाते; पर वह एक धेले की दवा भी न मँगवा सकी थी। उसकी ही उम्र अभी क्या थी। छत्तीसवाँ ही साल तो था; पर सारे बाल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। सारी देह ढल गयी थी, वह सुन्दर गेहुआँ रंग सँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिन्ता ही के कारण तो। कभी तो जीवन का सुख न मिला। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्म-सम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था। जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों ? इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था और दो चार घुड़कियाँ खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।

उसने परास्त होकर होरी की लाठी, मिरजई, जूते, पगड़ी और तमाकू का बटुआ लाकर सामने पटक दिये ।

होरी ने उसकी ओर आँखें तरेर कर कहा – क्या ससुराल जाना है जो पाँचों पोसाक लायी है ? ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे जाकर दिखाऊँ ।

होरी के गहरे साँवले, पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक पड़ी। धनिया ने लजाते हुए कहा- ऐसे ही तो बड़े सजीले जवान हो कि साली-सलहजें तुम्हें देख कर रीझ जायेंगी !

होरी ने फटी हुई मिरजई को बड़ी सावधानी से तह करके खाट पर रखते हुए कहा – तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया ? अभी तो चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

'जाकर सीसे में मुंह देखो। तुम-जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी अंजन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे ! तुम्हारी दशा देख-देखकर तो मैं और भी सूखी जाती हूँ कि भगवान यह बुढ़ापा कैसे कटेगा ? किसके द्वार पर भीख माँगेंगे ?'

होरी की वह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आँच में जैसे झुलस गयी। लकड़ी संभालता हुआ बोला – साठे तक पहुँचने की नौबत न आने पायेगी धनिया ! इसके पहले ही चल देंगे ।

धनिया ने तिरस्कार किया – अच्छा रहने दो, मत अशुभ मुँह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे, तो लगते हो कोसने ।

होरी लाठी कन्धे पर रखकर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाये हुए हृदय में आतंकमय कम्पन-सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय-दान दे रही थी। उसके अन्तःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकल कर होरी को अपने अन्दर छिपाये लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना-शक्ति आ गयी थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आँखोंवाले आदमी को हो सकता है ?

होरी कदम बढ़ाये चला जाता था। पगडण्डी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देख कर उसने मन में कहा – भगवान कहीं गौं से बरखा कर दें और डाँड़ी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा। देशी गायें तो न दूध दें न उनके बछवे ही किसी काम के हों। बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चले। नहीं, वह पछाईं गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार-पाँच सेर दूध होगा।

गोबर दूध के लिए तरस-तरस कर रह जाता है। इस उम्र में न खाया-पिया, तो फिर कब खायेगा। साल-भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाये। बछवे भी अच्छे बैल निकलेंगे । दो सौ से कम की होई न होगी। फिर, गऊ से ही तो द्वार की सोभा है। सबेरे-सबरे गऊ के दर्शन हो जायें तो क्या कहना। न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह शुभ दिन आयेगा !

हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी बैंक सूद से चैन करने या ज़मीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएँ उसके नन्हें-से हृदय में कैसे समातीं ।

जेठ का सूर्य आमों के झुरमुट से निकलकर आकाश पर छायी हुई लालिमा को अपने रजत-प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था और हवा में गर्मी आने लगी थी। दोनों ओर खेतों में काम करने वाले किसान उसे देखकर राम-राम करते और सम्मान-भाव से चिलम पीने का निमन्त्रण देते थे; पर होरी को इतना अवकाश कहाँ था। उसके अन्दर बैठी हुई सम्मान-लालसा ऐसा आदर पाकर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी। मालिकों से मिलते-जुलते रहने ही का तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं। नहीं उसे कौन पूछता ? पाँच बीघे के किसान की बिसात ही क्या ? यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हलवाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।

अब वह खेतों के बीच की पगडण्डी छोड़कर एक खलेटी में आ गया था, जहाँ बरसात में पानी भर जाने के कारण तरी रहती थी और जेठ में कुछ हरियाली नज़र आती थी। आस-पास के गाँवों की गउएँ यहाँ चरने आया करती थीं। उस समय में भी यहाँ की हवा में कुछ ताज़गी और ठंडक थी। होरी ने दो-तीन साँसें जोर से लीं। उसके जी में आया, कुछ देर यहीं बैठ जाये। दिन-भर तो लू-लपट में मरना है ही। कई किसान इस गड्ढे का पट्टा लिखाने को तैयार थे। अच्छी रकम देते थे; पर ईश्वर भला करे राय साहब का कि उन्होंने साफ़ कह दिया, यह जमीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गयी है और किसी दाम पर भी न उठायी जायेगी। कोई स्वार्थी जमींदार होता, तो कहता, गायें जायें भाड़ में, हमें रुपए मिलते हैं, क्यों छोड़ें। पर राय साहब अभी तक पुरानी मर्यादा निभाते आते हैं। जो मालिक प्रजा को न पाले, वह भी कोई आदमी है?

सहसा उसने देखा, भोला अपनी गायें लिये इसी तरफ़ चला आ रहा है। भोला इसी गाँव से मिले हुए पुरवे का ग्वाला था और दूध-मक्खन का व्यवसाय करता था। अच्छा दाम मिल जाने पर कभी-कभी किसानों के हाथ गायें बेच भी देता था। होरी का मन उन गायों को देख कर ललचा गया। अगर भोला वह आगे वाली गाय उसे दे तो क्या कहना ! रुपए आगे पीछे देता रहेगा। वह जानता था घर में रुपए नहीं हैं, अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका, बिसेसर साह का देना भी बाकी है, जिस पर

आने रुपए का सूद चढ़ रहा है; लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता जो तकाजे, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती, उसने उसे प्रोत्साहित किया। बरसों से जो साघ मन को आन्दोलित कर रही थी, उसने उसे विचलित कर दिया। भोला के समीप जाकर बोला – राम-राम भोला भाई, कहो क्या रंग-ढंग है। सुना अबकी मेले से नयी गायें लाये हो।

भोला ने रुबाई से जवाब दिया। होरी के मन की बात उसने ताड़ ली थी – हाँ, दो बछिये और दो गायें लाया। पहले वाली गायें सब सूख गयी थीं। बन्धी पर दूध न पहुंचे तो गुजर कैसे हो।

होरी ने आनेवाली गाय के पुट्टे पर हाथ रखकर कहा – दुधार तो मालूम होती है। कितने में ली ?

भोला ने शान जमायी – अब की बाजार बड़ा तेज़ रहा महतो, इसके अस्सी रुपए देने पड़े। आंखे निकल गयीं। तीस-तीस रुपए तो दोनों कलोरों के दिये। तिस पर गाहक रुपए का आठ सेर दूध माँगता है।

'बड़ा भारी कलेजा है तुम लोगों का भाई, लेकिन फिर लाये भी तो वह माल कि यहाँ दस-पाँच गाँवों में तो किसी के पास निकलेगी नहीं।'

भोला पर नशा चढ़ने लगा। बोला- राय साहब इसके सौ रुपए देते थे। दोनों कलोरों के पचास-पचास रुपए, लेकिन हमने न दिये। भगवान ने चाहा, तो सौ रुपए इसी व्यास में पीट लूंगा।

'इसमें क्या सन्देह है भाई ! मालिक क्या खाके लेगे। नजराने मे मिल जाये, तो भले ले लें। यह तुम्ही लोगों का गुर्दा है कि अँजुली - भर रुपए तकदीर के भरोसे गिन देते हो। यही जी चाहता है कि इसके दरसन करता रहूँ। धन्य है तुम्हारा जीवन कि गउओं की इतनी सेवा करते हो। हमें तो गाय का गोबर भी मयस्सर नहीं। गिरस्त के घर मे एक गाय भी न हो, तो कितनी लज्जा की बात है। साल-के-साल बीत जाते है, गोरस के दरशन नहीं होते। घरवाली बार-बार कहती है, भोला भैया से क्यों नहीं कहते । मैं कह देता हूँ, कभी मिलेंगे तो कहूँगा। तुम्हारे सुभाव से बड़ी परसन रहती है। कहती है, ऐसा मर्द ही नहीं देखा कि जब बातें करेंगे, नीची आँखें करके, कभी सिर नहीं उठाते।'

भोला पर जो नशा चढ़ रहा था, उसे इस भरपूर प्याले ने और गहरा कर दिया। बोला – भला आदमी वही है, जो दूसरों की बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझे। जो दुष्ट किसी मेहरिया की ओर ताके, उसे गोली मार देना चाहिए।

'यह तुमने लाख रुपए की बात कह दी भाई। बस सज्जन वही, जो दूसरों की आबरू को अपनी आबरू समझे ।'

'जिस तरह मर्द के मर जाने से औरत अनाथ हो जाती है, उसी तरह औरत के मर जाने से मर्द के हाथ-पाँव कट जाते हैं। मेरा तो घर उजड़ गया महतो, कोई एक लोटा पानी देनेवाला भी नहीं।'

गत वर्ष भोला की स्त्री लू लग जाने से मर गयी थी। यह होरी जानता था, लेकिन पचास बरस का खंखड़ भोला भीतर से इतना स्निग्ध है, वह न जानता था। स्त्री की लालसा उसकी आँखों में सजल हो गयी थी। होरी को आसन मिल गया। उसकी व्यावहारिक कृषक-वृद्धि सजग हो गयी।

'पुरानी मसल झूठी थोड़ी है – बिन घरनी घर भूत का डेरा। कहीं सगाई नहीं ठीक कर लेते ?'

'ताक में हूँ महतो, पर कोई जल्दी फँसता नहीं। सौ-पचास खरच करने को भी तैयार हूँ। जैसी भगवान की इच्छा।'

'अब मैं भी फिकर में रहूँगा। भगवान चाहेंगे, तो जल्दी घर बस जायेगा।'

'बस यही समझ लो कि उबर जाऊँगा भैया ! घर में खाने को भगवान का दिया बहुत है। चार पसेरी रोज दूध हो जाता है, लेकिन किस काम का।'

'मेरे ससुराल में एक मेहरिया है। तीन-चार साल हुए, उसका आदमी उसे छोड़-कर कलकत्ते चला गया। बेचारी पिसाई करके गुजर कर रही है। बाल-बच्चा भी कोई नहीं। देखने-सुनने में अच्छी है। बस, लच्छमी समझ लो।'

भोला का सिकुड़ा हुआ चेहरा जैसे चिकना गया। आशा में कितनी सुधा है। बोला – अब तो तुम्हारा ही आसरा है महतो ! छुट्टी हो, तो चलो एक दिन देख आयें।

'मैं ठीक-ठाक करके तब तुमसे कहूँगा। बहुत उतावली करने से भी काम बिगड़ जाता है।'

'जब तुम्हारी इच्छा हो तब चलो। उतावली काहे की। इस कबरी पर मन ललचाया हो, तो ले लो।'

'यह गाय मेरे मान की नहीं है दादा। मैं तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता। अपना धरम यह नहीं है कि मित्रों का गला दबायें। जैसे इतने दिन बीते हैं, वैसे और भी बीत जायेंगे।'

'तुम तो ऐसी बातें करते हो होरी, जैसे हम-तुम दो है। तुम गाय ले जाओ, दाम जो चाहे देना। जैसे मेरे घर रही, वैसे तुम्हारे घर रही। अस्सी रुपए में ली थी, तुम अस्सी रुपए ही दे देना। जाओ।'

'लेकिन मेरे पास नगद नहीं है दादा, समझ लो।'

'तो तुमसे नगद माँगता कौन है भाई !'

होरी की छाती गज-भर की हो गयी। अस्सी रुपए में गाय मँहगी न थी। ऐसा अच्छा डील-डौल, दोनों जून में छः-सात सेर दूध, सीधी ऐसी कि बच्चा भी दुह ले। इसका तो एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा। द्वार पर बंधेगी तो द्वार की शोभा बढ़ जायेगी। उसे अभी कोई चार सौ रुपए देने थे; लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ्त समझता था। कहीं भोला की सगाई ठीक हो गयी तो साल दो साल तो वह बोलेगा भी नहीं। सगाई न भी हुई, तो होरी का क्या बिगड़ता है। यही तो होगा, भोला बार-बार तगादा करने आयेगा, बिगड़ेगा, गालियाँ देगा। लेकिन होरी को इसकी ज्यादा

शर्म न थी। इस व्यवहार का वह आदी था। कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है। भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उसकी मर्यादा के अनुकूल था। अब भी लेन-देन में उसके लिए लिखा-पढ़ी होने और न होने में कोई अन्तर न था। सूखे-बूड़े की विपदाएँ उसके मन को भीरु बनाये रहती थीं। ईश्वर का रौद्र रूप सदैव उसके सामने रहता था। पर यह छल उसकी नीति में छल न था। यह केवल स्वार्थ-सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात न थी। इस तरह का छल तो वह दिन-रात करता रहता था। घर में दो-चार रुपए पड़े रहने पर भी महाजन के सामने कस्में खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है। सन को कुछ गीला कर देना और रुई में कुछ बिनौले भर देना उसकी नीति में जायज था। और यहाँ तो केवल स्वार्थ न था, थोड़ा-सा मनोरंजन भी था। बुड्ढों का बुढ़भस हास्यास्पद वस्तु है और ऐसे बुड्ढों से अगर कुछ ऐंठ भी लिया जाये, तो कोई दोष-पाप नहीं।

भोला ने गाय की पगहिया होरी के हाथ में देते हुए कहा - ले जाओ महतो, तुम भी याद करोगे। ब्याते ही छः सेर दूध ले लेना। चलो, मैं तुम्हारे घर तक पहुँचा दूँ। साइत तुम्हें अनजान समझकर रास्ते में कुछ दिक करे। अब तुमसे सच कहता हूँ, मालिक नब्बे रुपए देते थे, पर उनके यहाँ गउओं की क्या क़दर। मुझसे लेकर किसी हाकिम-हुक्काम को दे देते। हाकिमों को गऊ की सेवा से मतलब । वह तो खून चूसना-भर जानते हैं। जब तक दूध देती, रखते, फिर किसी के हाथ बेच देते। किसके पल्ले पड़ती कौन जाने। रुपया ही सब कुछ नहीं है भैया, कुछ अपना धरम भी तो है। तुम्हारे घर आराम से रहेगी तो। यह न होगा कि तुम आप खाकर सो रहो और गऊ भूखी खड़ी रहे। उसकी सेवा करोगे, चुमकारोगे। गऊ हमें आसिरवाद देगी। तुमसे क्या कहूँ भैया, घर में चंगुलभर भी भूसा नहीं रहा । रुपए सब बाजार में निकल गये । सोचा था महाजन से कुछ लेकर भूसा ले लेंगे; लेकिन महाजन का पहला ही नहीं चुका। उसने इनकार कर दिया। इतने जानवरों को क्या खिलाये, यही चिन्ता मारे डालती है। चुटकी-चुटकी भर खिलाऊँ, तो मन-भर रोज का खरच है। भगवान ही पार लगाये तो लगे।

होरी ने सहानुभूति के स्वर में कहा – तुमने हमसे पहले क्यों नहीं कहा ? हमने एक गाड़ी भूसा बेच दिया।

भोला ने माथा टोककर कहा – इसीलिए नहीं कहा भैया कि सबसे अपना दुःख क्यों रोऊँ। बाँटता कोई नहीं, हँसते सब है। जो गाये सूख गयी है उनका गम नहीं, पत्ती-सत्ती खिलाकर जिला लूंगा; लेकिन अब यह तो रातिव बिना नहीं रह सकती। हो सके, तो दस-बीस रुपए भूसे के लिए दे दो ।

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते है, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाये, वह किसी के फुसलाने मे नहीं आता, लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति

से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है; खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है; गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती दूसरे ही पीते है; मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान । होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

भोला की संकट-कथा सुनते ही उसकी मनोवृत्ति बदल गयी । पगहिया को भोला के हाथ में लौटाता हुआ बोला – रुपए तो दादा मेरे पास नहीं हैं, हाँ थोड़ा-सा भूसा बचा है, वह तुम्हें दूंगा। चलकर उठवा लो। भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे, और मैं लूंगा। मेरे हाथ न कट जायेंगे ?

भोला ने आर्द्र कण्ठ से कहा – तुम्हारे बैल भूखों न मरेंगे ! तुम्हारे पास भी ऐसा कौन-सा बहुत-सा भूसा रखा है।

'नहीं दादा, अबकी भूसा अच्छा हो गया था।'

'मैंने तुमसे नाहक भूसे की चर्चा की।'

'तुम न कहते और पीछे से मुझे मालूम होता, तो मुझे बड़ा रंज होता कि तुमने मुझे इतना गैर समझ लिया। अवसर पड़ने पर भाई की मदद भाई भी न करे, तो काम कैसे चले।'

'मुदा यह गाय तो लेते जाओ।'

'अभी नहीं दादा, फिर ले लूंगा।'

'तो भूसे के दाम दूध में कटवा लेना ।'

होरी ने दुःखित स्वर में कहा- दाम-कौड़ी की इसमें कौन बात है दादा, मैं एक-दो जून तुम्हारे घर खा लूं, तो तुम मुझसे दाम माँगोगे ?

'लेकिन तुम्हारे बैल भूखों मरेंगे कि नहीं ?'

'भगवान कोई-न-कोई सबील निकाल लेंगे ही। असाढ़ सिर पर है। कड़बी बो लूंगा।'

'मगर यह गाय तुम्हारी हो गयी। जिस दिन इच्छा हो आकर ले जाना।'

'किसी भाई का निलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वह इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।'

होरी में बाल की खाल निकालने की शक्ति होती, तो वह खुशी से गाय लेकर घर की राह लेता। भोला जब नकद रुपए नहीं माँगता तो स्पष्ट था कि वह भूसे के लिए गाय नहीं बेच रहा है, बल्कि इसका कुछ और आशय है; लेकिन जैसे पत्तों के खड़कने पर घोड़ा अकारण ही ठिठक जाता है और मारने पर भी आगे कदम नहीं उठाता वही दशा होरी की थी। संकट की चीज़ लेना पाप है, यह बात जन्म-जन्मान्तरों से उसकी आत्मा का अंश बन गयी थी।

भोला ने गद्गद् कंठ से कहा – तो किसी को भेज दूँ भूसे के लिए ?

होरी ने जवाब दिया – अभी मैं राय साहब की ड्योढ़ी पर जा रहा हूँ। वहाँ से घड़ी-भर में लौटूंगा, तभी किसी को भेजना।

भोला की आँखों में आँसू भर आये। बोला – तुमने आज मुझे उबार लिया होरी भाई ! मुझे अब मालूम हुआ कि मैं संसार में अकेला नहीं हूँ। मेरा भी कोई हितू है। एक क्षण के बाद उसने फिर कहा- उस बात को भूल न जाना ।

होरी आगे बढ़ा, तो उसका चित्त प्रसन्न था । मन में एक विचित्र स्फूर्ति हो रही थी। क्या हुआ, दस-पाँच मन भूसा चला जायेगा, बेचारे को संकट में पड़ कर अपनी गाय तो न बेचनी पड़ेगी। जब मेरे पास चारा हो जायेगा, तब गाय खोल लाऊँगा । भगवान करें, मुझे कोई मेहरिया मिल जाये। फिर तो कोई बात ही नहीं।

उसने पीछे फिर कर देखा। कबरी गाय पूंछ से मक्खियाँ उड़ाती, सिर हिलाती, मस्तानी, मंद-गति से झूमती चली जाती थी, जैसे बाँदियों के बीच में कोई रानी हो। कैसा शुभ होगा वह दिन, जब यह कामधेनु उसके द्वार पर बँधेगी !

2

सेमरी और बेलारी दोनों अवध-प्रान्त के गाँव हैं। जिले का नाम बताने की कोई ज़रूरत नहीं। होरी बेलारी में रहता है, राय साहब अमरपाल सिंह सेमरी में। दोनों गाँवों में केवल पाँच मील का अन्तर है। पिछले सत्याग्रह-संग्राम में राय साहब ने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गये थे। तब से उनके इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गयी थी। यह नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो, या डाँड़ और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो; मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। राय साहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। वह बेचारे भी तो उसी व्यवस्था के गुलाम थे। जाब्ते का काम तो जैसे होता चला आया है, वैसा ही होगा। राय साहब की सज्जनता उस पर कोई असर न डाल सकती थी; इसलिए आमदनी और अधिकार में जौ-भर की भी कमी न होने पर भी उनका यश मानों बढ़ गया था। असामियों से वह हँसकर बोल लेते थे। यही क्या कम है ? सिंह का काम तो शिकार करना है; अगर वह गरजने और गुर्राना के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता। शिकार की खोज में जंगल में न भटकना पड़ता ।

राय साहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाये रखते थे। उनकी नजरें और डालियाँ और कर्मचारियों की दस्तूरियाँ जैसी की तैसी चली आती थीं। साहित्य और संगीत के प्रेमी थे, ड्रामा के शौकीन, अच्छे वक्ता थे, अच्छे लेखक, अच्छे निशाने-बाज़ । उनकी पत्नी को मरे आज दस साल हो चुके थे; मगर दूसरी शादी न की थी । हँस-बोलकर अपने विधुर जीवन को बहलाते रहते थे।

होरी ड्योढ़ी पर पहुंचा तो देखा जेठ के दशहरे के अवसर पर होने वाले धनुष-यज्ञ की बड़ी जोरों से तैयारियाँ हो रही हैं: कहीं रंग-मंच बन रहा था, कहीं मंडप, कहीं मेहमानों का आतिथ्य-गृह, कहीं दुकानदारों के लिए दुकानें। धूप तेज़ हो गयी थी; पर राय साहब खुद काम में लगे हुए थे। अपने पिता से सम्पत्ति के साथ-साथ उन्होंने